

कबीर या भगत कबीर 15वीं सदी के भारतीय रहस्यवादी कवि और संत थे। वे हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन युग में ज्ञानाश्रयी-निर्गुण शाखा की काव्यधारा के प्रवर्तक थे। इनकी रचनाओं ने हिन्दी प्रदेश के भक्ति आंदोलन को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। उनका लेखन सिखों ॐ के आदि ग्रंथ में भी देखने को मिलता है।[1][2]

कबीर

वे हिन्दू धर्म व इस्लाम को न मानते हुए धर्म निरपेक्ष थे। उन्होंने सामाज में फैली कुरीतियों, कर्मकांड, अंधविश्वास की निंदा की और सामाजिक बुराइयों की कड़ी आलोचना की थी।[1][3] उनके जीवनकाल के दौरान हिन्दू और मुसलमान दोनों ने उन्हें अपने विचार के लिए धमकी दी थी।[2]

कबीर पंथ नामक धार्मिक सम्प्रदाय इनकी शिक्षाओं के अनुयायी हैं।[4]

जीवन

लहरतरब प्रगट्या स्थल

कबीर के (लगभग 14वीं-15वीं शताब्दी) जन्म स्थान के बारे में विद्वानों में मतभेद है परन्तु अधिकतर विद्वान इनका जन्म काशी में ही मानते हैं, जिसकी पुष्टि स्वयं कबीर का यह कथन भी करता है।

"काशी में परगट भये ,रामानंद चेताये "

कबीर के गुरु के सम्बन्ध में प्रचलित कथन है कि कबीर को उपयुक्त गुरु की तलाश थी। वह वैष्णव संत आचार्य रामानंद को अपना अपना गुरु बनाना चाहते थे लेकिन उन्होंने कबीर को शिष्य बनाने से मना कर दिया। कबीर ने अपने मन में ठान लिया कि स्वामी रामानंद को ही हर कीमत पर अपना गुरु बनाऊंगा, इसके लिए कबीर के मन में एक विचार आया कि स्वामी रामानंद जी सुबह चार बजे गंगा स्नान करने जाते हैं उसके पहले ही उनके जाने के मार्ग में सीढ़ियों लेट जाऊंगा और उन्होंने ऐसा ही किया। एक दिन, एक पहर रात रहते ही कबीर पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर गिर पड़े। रामानन्द जी गंगास्नान करने के लिये सीढ़ियां उतर रहे थे कि तभी उनका पैर कबीर के शरीर पर पड़ गया। उनके मुख से तत्काल 'राम-राम' शब्द निकल पड़ा। उसी राम को कबीर ने दीक्षा-मन्त्र मान लिया और रामानन्द जी को अपना गुरु स्वीकार कर लिया। कबीर के ही शब्दों में-

काशी में परगट भये , रामानंद चेताये

जीविकोपार्जन के लिए कबीर जुलाहे का काम करते थे।

कबीर की दृढ़ मान्यता थी कि कर्मों के अनुसार ही गति मिलती है स्थान विशेष के कारण नहीं। अपनी इस मान्यता को सिद्ध करने के लिए अंत समय में वह मगहर चले गए ; क्योंकि लोगों की मान्यता थी कि काशी में मरने पर स्वर्ग और मगहर में मरने पर नरक मिलता है। मगहर में उन्होंने अंतिम सांस ली। आज भी वहां पर मजार व समाधी स्थित है।

भाषाकबीर की भाषा सधुक्कड़ी एवं पंचमेल खिचड़ी हैं। इनकी भाषा में हिंदी भाषा की सभी बोलियों के शब्द सम्मिलित हैं। राजस्थानी, हरयाणवी, पंजाबी, खड़ी बोली, अवधी, ब्रजभाषा के शब्दों की बहुलता है।

कृतियांधर्मदास ने उनकी वाणियों का संग्रह " बीजक " नाम के ग्रंथ मे किया जिसके तीन मुख्य भाग हैं : साखी , सबद (पद ) , रमैनी

साखी: संस्कृत ' साक्षी , शब्द का विकृत रूप है और धर्मोपदेश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अधिकांश साखियां दोहों में लिखी गयी हैं पर उसमें सोरठे का भी प्रयोग मिलता है। कबीर की शिक्षाओं और सिद्धांतों का निरूपण अधिकतर साखी में हुआ है।

सबद गेय पद है जिसमें पूरी तरह संगीतात्मकता विद्यमान है। इनमें उपदेशात्मकता के स्थान पर भावावेश की प्रधानता है ; क्योंकि इनमें कबीर के प्रेम और अंतरंग साधना की अभिव्यक्ति हुई है।

रमैनी चौपाई छंद में लिखी गयी है इनमें कबीर के रहस्यवादी और दार्शनिक विचारों को प्रकट किया गया है।

Kabir-stamp-370x630

धर्म के प्रतिसाधु संतों का तो घर में जमावड़ा रहता ही था। कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे- 'मसि कागद छूवो नहीं, कलम गही नहीं हाथ।' उन्होंने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे, मुंह से भाखे और उनके शिष्यों ने उसे लिख लिया। आप के समस्त विचारों में रामनाम की महिमा प्रतिध्वनित होती है। वे एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे। "अवतार, मूर्तिपूजा, रोज़ा, ईद, मस्जिद, मंदिर आदि को वे नहीं मानते थे।

वे कभी कहते हैं-

'हरिमोर पिउ, मैं राम की बहुरिया' तो कभी कहते हैं, 'हरि जननी में बालक तोरा'।  
और कभी "बडा हुआ तो क्या हुआ जैसे"

उस समय हिंदू जनता पर मुस्लिम आतंक का कहर छाया हुआ था। कबीर ने अपने पंथ को इस ढंग से सुनियोजित किया जिससे मुस्लिम मत की ओर झुकी हुई जनता सहज ही इनकी अनुयायी हो गयी। उन्होंने अपनी भाषा सरल और सुबोध रखी ताकि वह आम आदमी तक पहुंच सके। इससे दोनों सम्प्रदायों के परस्पर मिलन में सुविधा हुई। इनके पंथ मुसलमान-संस्कृति और गोभक्षण के विरोधी थे। कबीर को शांतिमय जीवन प्रिय था और वे अहिंसा, सत्य, सदाचार आदि गुणों के प्रशंसक थे। अपनी सरलता, साधु स्वभाव तथा संत प्रवृत्ति के कारण आज विदेशों में भी उनका समादर हो रहा है।

उसी हालत में उन्होंने बनारस छोड़ा और आत्मनिरीक्षण तथा आत्मपरीक्षण करने के लिये देश के विभिन्न भागों की यात्राएं कीं इसी क्रम में वे कालिंजर जिले के पिथौराबाद शहर में पहुंचे। वहां रामकृष्ण का छोटा सा मन्दिर था। वहां के संत भगवान गोस्वामी के जिजासु साधक थे किंतु उनके तर्कों का अभी तक पूरी तरह समाधान नहीं हुआ था। संत कबीर से उनका विचार-विनिमय हुआ। कबीर की एक साखी ने उन के मन पर गहरा असर किया-

'बन ते भागा बिहरे पड़ा, करहा अपनी बान। करहा बेदन कासों कहे, को करहा को जान।।'  
वन से भाग कर बहेलिये के द्वारा खोये हुए गड्ढे में गिरा हुआ हाथी अपनी व्यथा किस से कहे ?

सारांश यह कि धर्म की जिजासा से प्रेरित हो कर भगवान गोसाई अपना घर छोड़ कर बाहर तो निकल आये और हरिव्यासी सम्प्रदाय के गड्ढे में गिर कर अकेले निर्वासित हो कर असंवाद्य स्थिति में पड़ चुके हैं।

मूर्ति पूजा को लक्ष्य करते हुए उन्होंने एक साखी हाजिर कर दी-

पाहन पूजे हरि मिलें, तो मैं पूजों पहार। वा ते तो चाकी भली, पीसी खाय संसार।।  
कबीर के रामकबीर के राम तो अगम हैं और वे संसार के कण-कण में विराजते हैं। कबीर के राम इस्लाम के एकेश्वरवादी, एकसत्तावादी खुदा भी नहीं हैं। इस्लाम में खुदा या अल्लाह को समस्त जगत एवं जीवों से भिन्न एवं परम समर्थ माना जाता है। पर कबीर के राम परम समर्थ भले हों, लेकिन समस्त जीवों और जगत से भिन्न तो कदापि नहीं हैं। बल्कि इसके विपरीत वे तो सबमें व्याप्त रहने वाले रमता राम हैं। वह कहते हैं

व्यापक ब्रह्म सबनिमें एकै, को पंडित को जोगी। रावण-राव कवनसूं कवन वेद को रोगी।

कबीर राम की किसी खास रूपाकृति की कल्पना नहीं करते, क्योंकि रूपाकृति की कल्पना करते ही राम किसी खास ढांचे (फ्रेम) में बंध जाते, जो कबीर को किसी भी हालत में मंजूर नहीं। कबीर राम की अवधारणा को एक भिन्न और व्यापक स्वरूप देना चाहते थे। इसके कुछ विशेष कारण थे, जिनकी चर्चा हम इस लेख में आगे करेंगे। किन्तु इसके बावजूद कबीर राम के साथ एक व्यक्तिगत पारिवारिक किस्म का संबंध जरूर स्थापित करते हैं। राम के साथ उनका प्रेम उनकी अलौकिक और महिमाशाली सत्ता को एक क्षण भी भुलाए बगैर सहज प्रेमपरक मानवीय संबंधों के धरातल पर प्रतिष्ठित है।

कबीर नाम में विश्वास रखते हैं, रूप में नहीं। हालांकि भक्ति-संवेदना के सिद्धांतों में यह बात सामान्य रूप से प्रतिष्ठित है कि 'नाम रूप से बढ़कर है', लेकिन कबीर ने इस सामान्य सिद्धांत का क्रांतिधर्मी उपयोग किया। कबीर ने राम-नाम के साथ लोकमानस में शताब्दियों से रचे-बसे संश्लिष्ट भावों को उदात्त एवं व्यापक स्वरूप देकर उसे पुराण-प्रतिपादित ब्राह्मणवादी विचारधारा के खांचे में बांधे जाने से रोकने का प्रयास किया।

कबीर के राम निर्गुण-सगुण के भेद से परे हैं। वास्तव में उन्होंने अपने राम को शास्त्र-प्रतिपादित अवतारी, सगुण, वर्चस्वशील वर्णाश्रम व्यवस्था के संरक्षक राम से अलग करने के लिए ही 'निर्गुण राम' शब्द का प्रयोग किया—'निर्गुण राम जपहु रे भाई।' इस 'निर्गुण' शब्द को लेकर भ्रम में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। कबीर का आशय इस शब्द से सिर्फ इतना है कि ईश्वर को किसी नाम, रूप, गुण, काल आदि की सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता। जो सारी सीमाओं से परे हैं और फिर भी सर्वत्र हैं, वही कबीर के निर्गुण राम हैं। इसे उन्होंने 'रमता राम' नाम दिया है। अपने राम को निर्गुण विशेषण देने के बावजूद कबीर उनके साथ मानवीय प्रेम संबंधों की तरह के रिश्ते की बात करते हैं। कभी वह राम को माधुर्य भाव से अपना प्रेमी या पति मान लेते हैं तो कभी दास्य भाव से स्वामी। कभी-कभी वह राम को वात्सल्य मूर्ति के रूप में मां मान लेते हैं और खुद को उनका पुत्र। निर्गुण-निराकार ब्रह्म के साथ भी इस तरह का सरस, सहज, मानवीय प्रेम कबीर की भक्ति की विलक्षणता है। यह दुविधा और समस्या दूसरों को भले हो सकती है कि जिस राम के साथ कबीर इतने अनन्य, मानवीय संबंधपरक प्रेम करते हों, वह भला निर्गुण कैसे हो सकते हैं, पर खुद कबीर के लिए यह समस्या नहीं है।

वह कहते भी हैं

“संतौ, धोखा कासूं कहिये। गुनमें निरगुन, निरगुनमें गुन, बाट छांड़ि क्यूं बहिसे!” नहीं है।

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने कबीर के राम एवं कबीर की साधना के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है : " कबीर का सारा जीवन सत्य की खोज तथा असत्य के खंडन में व्यतीत हुआ। कबीर की साधना "मानन से नहीं, "जानने से आरम्भ होती है। वे किसी के शिष्य नहीं, रामानन्द द्वारा चेतार्य हुए चेला हैं। उनके लिए राम रूप नहीं है, दशरथी राम नहीं है, उनके राम तो नाम साधना के प्रतीक हैं। उनके राम किसी सम्प्रदाय, जाति या देश की

सीमाओं में कैद नहीं है। प्रकृति के कण-कण में, अंग-अंग में रमण करने पर भी जिसे अनंग स्पर्श नहीं कर सकता, वे अलख, अविनाशी, परम तत्व ही राम हैं। उनके राम मनुष्य और मनुष्य के बीच किसी भेद-भाव के कारक नहीं हैं। वे तो प्रेम तत्व के प्रतीक हैं। भाव से ऊपर उठकर महाभाव या प्रेम के आराध्य हैं :-

‘प्रेम जगावै विरह को, विरह जगावै पीउ, पीउ जगावै जीव को, जोड़ पीउ सोई जीउ’ - जो पीउ है, वही जीव है। इसी कारण उनकी पूरी साधना “हंस उबारन आए की साधना है। इस हंस का उबारना पोथियों के पढ़ने से नहीं हो सकता, ढाई आखर प्रेम के आचरण से ही हो सकता है। धर्म ओढ़ने की चीज नहीं है, जीवन में आचरण करने की सतत सत्य साधना है। उनकी साधना प्रेम से आरम्भ होती है। इतना गहरा प्रेम करो कि वही तुम्हारे लिए परमात्मा हो जाए। उसको पाने की इतनी उत्कण्ठा हो जाए कि सबसे वैराग्य हो जाए, विरह भाव हो जाए तभी उस ध्यान समाधि में पीउ जाग्रत हो सकता है। वही पीउ तुम्हारे अर्न्तमन में बैठे जीव को जगा सकता है। जोड़ पीउ है सोई जीउ है। तब तुम पूरे संसार से प्रेम करोगे, तब संसार का प्रत्येक जीव तुम्हारे प्रेम का पात्र बन जाएगा। सारा अहंकार, सारा द्वेष दूर हो जाएगा। फिर महाभाव जगेगा। इसी महाभाव से पूरा संसार पिउ का घर हो जाता है।

सूरज चन्द्र का एक ही उजियारा, सब यहि पसरा ब्रह्म पसारा।

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी

फूटा कुम्भ जल जलहीं समाना, यह तथ कथौ गियानी।”